Omniscient
(An International Multidisciplinary Peer Reviewed Journal)
Vol 2 Issue 1 Jan-Mar 2024 EISSN: 2583-7575

प्राचीन भारत में हिंदू सभ्यता एवं वास्तुकला का अवलोकन

प्रवीण पाठक

इतिहास विभाग, पंडित सुंदरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय, बिलासपुर

Corresponding author: praveenpthak@gmail.com

Available at https://omniscientmjprujournal.com

सारांश

वास्तुकला इमारतों और संरचनाओं को अभिकल्प (डिजाइन) करने की कला और विज्ञान है। इमारतों, परियोजना में कार्यात्मक और साथ ही सौंदर्यपूर्ण चरित्र प्रदान करने के लिए किया जा सकता है। वास्तुकला भारतीय सभ्यता की सबसे स्थायी उपलब्धियों में से एक है। भारत की कलात्मक और स्थापत्य विरासतें लगभग पाँच सहस्राब्दी पुरानी हैं। यद्यपि हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और लोथल के सिंधु घाटी स्थल व्यापक नगर नियोजन के पर्याप्त प्रमाण प्रदान करते हैं, भारतीय वास्तुकला की शुरुआत अधिक उचित रूप से अशोक के शासनकाल में भारत में बौद्ध धर्म के आगमन और इसके निर्माण से मानी जाती है। मौर्य, शुंग, सातवाहन, गुप्त, चंदेल, सोलंकी वास्तुकला के महान संरक्षक थे। गुप्त काल को स्थापत्य कला का चरम शताब्दी के रूप में वर्णित किया जा सकता है, दक्षिणी हिंदू वास्तुकला का विकास पल्लव, चोल, चालुक्य, पाण्ड्य, होयसल और विजयनगर साम्राज्य के शासकों ने वास्तुकला की उन्नति में बहुत बड़ा योगदान दिया। प्राचीन हिंदू स्थापत्य कला भारतीय कौशल, बुद्धिमत्ता, ज्ञान, नवाचार का बोध कराती हैं। आज तकनीकी का इस्तेमाल करने के बावजूद प्राचीन सभ्यता को मात नहीं दे पा रहें है। सिंधु सभ्यता, वैदिक सभ्यता, मौर्य, गुप्त, राजपूत, दक्षिण की वास्तुकला एक से बढ़कर एक है। जिसकी जितनी प्रशंसा की जाए कम है।

बीज शब्द- *हिंदू वास्तुकला, सिंधु सभ्यता, मौर्य, गुप्त वंश, चोल, चालुक्य*

प्रस्तावना

हिन्दू वास्तुकला भारतीय समाज की धार्मिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक संरचना का जीवंत प्रतीक है, जो प्राचीन काल से मंदिरों और धार्मिक स्थलों के निर्माण में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह केवल आस्था की अभिव्यक्ति नहीं थी, बल्कि समाज के हर वर्ग और शासकों के प्रभाव को भी उजागर करती थी। विभिन्न राजवंशों ने अपने-अपने क्षेत्रों में विशिष्ट स्थापत्य शैलियों को प्रोत्साहन दिया, जो उनकी शक्ति, समृद्धि और धार्मिक विश्वासों का द्योतक थीं। उदाहरणस्वरूप, दक्षिण भारत में चोल, पल्लव, और विजयनगर राजवंशों ने द्रविड़ शैली के भव्य मंदिरों का निर्माण किया, जिनमें गोपुरम (मंदिर के मुख्य द्वार के ऊँचे टॉवर) और विशाल प्रांगण प्रमुख थे। तंजावुर स्थित बृहदीश्वर मंदिर, चोल वंश के शासनकाल के दौरान निर्मित, शासकीय शक्ति और उत्कृष्ट वास्तुकला का एक आदर्श उदाहरण है।

प्राचीन हिन्दू वास्तुकला भारतीय सभ्यता की गहरी धार्मिक और सांस्कृतिक जड़ों को व्यक्त करती है, जिसकी शुरुआत वैदिक युग से मानी जाती है। उस समय यज्ञ वेदियों और मंडपों का निर्माण होता था, जबकि मूर्ति पूजा के उदय के साथ मंदिर निर्माण की परंपरा आगे बढ़ी। इन मंदिरों का निर्माण वास्तु शास्त्र के सिद्धांतों पर आधारित था, जो न केवल धार्मिक नियमों, बल्कि पर्यावरणीय सामंजस्य पर भी बल देते थे।

मौर्य और गुप्त काल में हिन्दू वास्तुकला अपने उत्कर्ष पर पहुँची। मौर्य काल में स्तूप, विहार और रॉक-कट गुफाओं का निर्माण हुआ, जिनमें अशोक के स्तंभ और शिलालेख प्रमुख हैं। गुप्त काल को 'भारतीय वास्तुकला का स्वर्ण युग' माना जाता है, जब मंदिर निर्माण में प्रमुख संरचनात्मक परिवर्तन हुए और पहली बार गर्भगृह, मंडप और शिखर जैसे महत्वपूर्ण हिस्सों का समावेश हुआ। उदयगिरि की गुफाएं और भीतरी का विष्णु मंदिर गुप्त काल की स्थापत्य कला के बेहतरीन उदाहरण हैं।

राजाओं के संरक्षण में हिन्दू वास्तुकला ने और अधिक उन्नति की। मौर्य, गुप्त, चोल, पल्लव, गंग और चालुक्य जैसे प्रमुख राजवंशों ने अपने क्षेत्रों में स्थापत्य शैलियों को नई ऊँचाइयाँ दीं। गुप्त और मौर्य राजाओं ने प्रारंभिक नागर शैली और रॉक-कट निर्माण शैली को बढ़ावा दिया, जबकि दक्षिण भारत में पल्लव और चोल राजाओं ने द्रविड़ शैली का विकास किया। बृहदीश्वर मंदिर और खजुराहो के मंदिर, कोणार्क का सूर्य मंदिर जैसे अद्वितीय उदाहरण इन शैलियों की उत्कृष्टता को दर्शाते हैं।

मंदिर केवल धार्मिक अनुष्ठानों के स्थल नहीं थे, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र भी थे। यहाँ नृत्य, संगीत, और कला की शिक्षा दी जाती थी, और ये स्थल समाज के विभिन्न वर्गों के लिए सांस्कृतिक आयोजनों का केंद्र होते थे। राजाओं द्वारा संरक्षित यह वास्तुकला न केवल उनकी शक्ति और समृद्धि का प्रतीक थी, बल्कि समाज में एकता और सहयोग की भावना को भी प्रोत्साहित करती थी। इस प्रकार, प्राचीन हिन्दू वास्तुकला धार्मिकता, सामाजिक जीवन और राजकीय संरक्षण के एक अद्वितीय संगम के रूप में भारतीय सभ्यता की गहन सांस्कृतिक समृद्धि और ऐतिहासिक विकास को दर्शाती है।

अध्ययन उद्देश्य- प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

- प्राचीन हिन्दू वास्तुकला का अवलोकन
- प्रमुख राजवंशों के समय स्थापत्य शैली के विकास का अवलोकन

- दक्षिण भारत की स्थापत्य शैली का अध्ययन

लेखन परिसीमा- प्राचीन काल में हिन्दू वास्तुकला एवं प्रमुख राजवंशों के स्थापत्य कला के निर्माण में योगदान तक लेखन को सीमित रखना।

शोध विधि- प्रस्तुत अध्ययन में ऐतिहासिक विश्लेषात्मक का प्रयोग किया गया हैं।

शोध प्रविधि- प्रस्तुत शोध को पूर्ण करने के लिए गुणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया हैं।

स्रोत- यह शोध पत्र द्वितीयक स्रोतों एवं आंकड़ो पर आधारित है। स्रोतों के रूप में मुख्यत: पुस्तकों का प्रयोग किया गया है।

हिन्दू वास्तुकला का परिचय

वास्तुकला में संरचनाओं के डिजाइन में सौंदर्यशास्त्र, कार्यात्मकता, सामग्रियों का उपयोग और स्थानिक योजना का संतुलन होता है। वास्तुकला की प्राचीन परंपराएँ मिस्र के पिरामिड, यूनान के पार्थेनन, भारत के ताजमहल और फ्रांस के नोट्रे डेम जैसे अद्भुत संरचनाओं में देखने को मिलती हैं। वास्तुकला न केवल भौतिक संरचनाओं का निर्माण है, बल्कि यह समाज, संस्कृति, और विचारों का प्रतिबिंब भी है। इसका इतिहास मानव सभ्यता के विकास, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और तकनीकी प्रगति का दर्पण है, जो हमें यह दिखाता है कि एक स्थान या समय विशेष में लोग कैसे रहते थे और उनकी प्राथमिकताएँ क्या थीं। भारतीय वास्तुकला के प्रमुख चरणों में हड़प्पा सभ्यता, मौर्य और गुप्त काल, द्रविड़ और नागर शैली के मंदिर निर्माण, मुगलकालीन वास्तुकला, औपनिवेशिक काल की यूरोपीय स्थापत्य शैली, और आधुनिक भारतीय वास्तुकला शामिल हैं।

सिंधु घाटी सभ्यता

हड़प्पा सभ्यता जिसे सिंधु सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है। एक लंबे और निरंतर सांस्कृतिक विकास की परिणति है। जो भारत के उत्तर-पश्चिम में सिंधु नदी के मैदानों, घाटियों और एक शक्तिशाली नदी के आसपास के क्षेत्रों विकसित हुई है। यह नदी, अपनी कई सहायक नदियों के साथ, आज भी पंजाब और सिंध की जीवन रेखा है और उनकी कृषि समृद्धि का आधार है। दुनिया की तीन सबसे पुरानी सभ्यताएँ महान नदियों के किनारे विकसित हुईं। (आवरी, 2007, पृष्ठ. 38) । हड़प्पा पुरातत्व की कहानी, हालांकि शायद मिस्र और मेसोपोटामिया की तरह रोमांटिक या उदासीन नहीं है, लेकिन भौगोलिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में अलग-अलग हद तक खुदाई की गई साइटों के कार्य में विद्वत्तापूर्ण और

दृढ़ प्रयास की एक उल्लेखनीय कहानी है। (आवरी, 2007, पृष्ठ. 40) । पांच बहुत बड़े स्थल शामिल हैं, हड़प्पा (पश्चिमी पंजाब), मोहनजो-दारो (सिंध), धोलावीरा (गुजरात), राखीगारी (हरियाणा) और गनवेरीवाला (बहावलपुर)। इनमें से तीन साइटें 100 हेक्टेयर, या 250 एकड़ क्षेत्र को कवर करती हैं, जबकि अन्य दो में से प्रत्येक 80 हेक्टेयर, या 200 एकड़ है।

नागरिक योजना और संरचनाएँ

हड़प्पा और मोहनजो-दारो के दो शहरों में कोई भी खुदाई शुरू होने पुरातत्वविदों को सिंधु लोगों के शहरी वैभव से परिचिय हुआ। सिंधु सभ्यता के उत्खनन से जिसमें सैकड़ों और हजारों ईंटें थीं। लेकिन जिन ईंटों ने पुरातत्वविदों को वास्तव में मोहित किया वे लगभग 2600 ईसा पूर्व की थीं। वे घने जंगलों की लकड़ी से कोयले से पकाई गई भट्टियों में पकाई गई ईंटें थीं जो उस समय, सिंधु घाटी में प्रचुर मात्रा में रही होंगी। ये पूरी तरह से आकार की पकी हुई भट्ठी की ईंटें 7*14*28 सेमी मापने वाले मानक आकार की थीं। जिनकी मोटाई, चौड़ाई और लंबाई का अनुपात 1:2:4 से शुरू होता है। मलबे और उगी हुई घास की ऊपरी परतों को साफ करने के बाद, वहाँ एक पूरे शहर के खंडहरों के नीचे से दिखाई दिया, जो बेहद अच्छी तरह से योजनाबद्ध था और पश्चिम में सेक्टरों या टीलों में विभाजित था, मजबूत किलेबंदी वाला एक ऊंचा गढ़ टीला था, और पूर्व में छोटे टीलों वाला निचला शहर था। गढ़ के टीले पर दो या तीन बड़े सार्वजनिक भवनों के खंडहर हैं, जिनमें से महान स्नानघर आज सबसे अच्छी तरह से जाना जाता है, दूसरा एक अन्न भंडार जैसा दिखता है। और तीसरी इमारत संभवतः निचले शहर में एक बड़ा हॉल है, सड़कों को ग्रिड में व्यवस्थित किया गया था। पैटर्न, प्रमुख उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम सड़कें एक-दूसरे को काटती हैं, जबकि कई छोटे खंड और गलियां उन्हें काटती हैं। उनके बीच में घर के ब्लॉक बनाए गए थे, जिनमें से कोई भी मुख्य सड़कों पर नहीं खुलता था (आवरी, 2007, पृष्ठ. 44) ।

मूर्तिकला, लिपि और गणित

सिंधु सभ्यता में मानकीकृत ईंटें और टेराकोटा के तराजू के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के शिल्प सामान और उपकरण शामिल हैं (आवरी, 2007, पृष्ठ. 49) । मोहनजो-दारो की नृत्य करने वाली लड़की की मूर्ति, उसकी सुंदर और सुरुचिपूर्ण मुद्रा, नग्न, बाजुओं में चूड़िया पहनी हुई है। यह नाचने वाली लड़की एक कांस्य से निर्मित है। मूर्तिकला की परंपरा हड़प्पा काल से चली आ रही है। (आवरी, 2007,पृष्ठ.50) । हड़प्पा काल में ताबे, कांसे, पत्थरों ,मिट्टियों की

कलाकृतियाँ देखने को मिलती है। जिसमें से प्रमुख रूप से एक योगी मूर्ति है। इसके अलावा बहुत सारी मिट्टी की बनी हुई मूर्तियाँ है जो कलात्मक रूप से सुंदर है।

वैदिक युगीन सभ्यता

वैदिक ग्रंथो में जहाजों और रथों के निर्माण का उल्लेख मिलता है। सोने और अन्य धातुओं के लोहे का उपयोग सर्वविदित था। इसमें एक लोहार के काम का उल्लेख मिलता है, और सुनार द्वारा सोना पिघलाने के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है लेकिन हमें वैदिक काल में काम करने वाली धातुओं का बेहतर अंदाज़ा विभिन्न सोने के आभूषणों और लोहे के बर्तनों और युद्ध के उपकरणों के वर्णन से मिलता है जो पूरे ऋग्वेद में पाए जाते हैं (दत्त , 2000, पृष्ठ. 45) । वैदिक ग्रंथों की रचना आर्य ऋषियों ने की थी और पीढ़ी-दर-पीढ़ी उन्हें मौखिक रूप से सौंपते रहे। महान महाकाव्य महाभारत और रामायण, आर्यावर्त या आर्य युग के दौरान गांव और शहर के जीवन का स्पष्ट चित्रण करते हैं (माथुर, 2006, पृष्ठ. 8) । सामान्य तौर पर, वैदिक काल के शहर योजना में आयताकार होते थे और दो मुख्य मार्गों द्वारा चार भागों में विभाजित होते थे, जो समकोण पर प्रतिच्छेद करते थे और प्रत्येक भाग एक शहर के गढ़ की ओर जाता था और दूसरे में निवास क्षेत्र होता था। एक तिहाई हिस्सा व्यापारियों के लिए आरक्षित था, और आखिरी हिस्सा उन व्यापारियों के लिए था जो अपने माल का प्रदर्शन कर सकते थे। प्रारंभिक हिंदू वास्तुकला की शुरुआत धीरे-धीरे अजंता में शानदार बौद्ध स्तूपों और चट्टानों को काटकर बनाई गई गुफाओं में बदल गई (माथुर, 2006, पृष्ठ. 10) । इसमें कोई संदेह नहीं है कि विभिन्न चट्टानी और पहाड़ी इलाकों में जहां प्रारंभिक हिंदुओं ने अपने उपनिवेश स्थापित किए, उन्होंने जल्द ही वास्तुकला के लिए टिकाऊ और सस्ती सामग्री के रूप में पत्थर का उपयोग करना सीख लिया (दत्त, 2000, पृष्ठ. 46) ।

मौर्यकालीन वास्तुकला

मौर्य काल में कला का उल्लेखनीय स्तर तक विकास हुआ। स्तूप, स्तम्भ, गुहा, विहार मौर्य स्थापत्य का प्रगति का प्रतीक बन गया। सांची का मूलरूप भारत में इन सभी संरचनाओं में सबसे प्रसिद्ध है, और स्तूप के विकास की पूरी श्रृंखला का निर्माण हुआ। शुंग शासन के तहत सांची के स्तूप को बहुत बड़ा किया गया था और चारों ओर एक छत बनाई गई थी। यह एक वैदिक पत्थर या रेलिंग है, जो स्तूप और उसकी छत दोनों को घेरे हुए है। सातवाहनों के शासनकाल में वैदिक काल के प्रत्येक प्रमुख बिंदु पर सुंदर नक्काशीदार तोरण बनाए गए थे। इस काल के दौरान

मूर्तिकला की कला भी विकसित हुई। यह सांची स्तूप और बोधगया की पत्थर की वेदिका और तोरणों पर विश्लेषण के लिए प्रचुर मूर्तिकला सामग्री है (अवारी, 2007, पृष्ठ. 146)। स्तूप जिसमें कमल के फूल घुमावदार तने, पेड़ और फूलों की मालाएं शामिल हैं, दूसरे में अलग-अलग आकृतियां हैं, जैसे कि यक्ष और यक्षणी, नर और मादा अर्ध-दिव्य प्राणी और जीवन आत्माएं, देवता कथात्मक कहानी जो बुद्ध के जीवन के विभिन्न दृश्यों को दर्शाती हैं जैसे कि माया देवी, बुद्ध, की मां का सपना, जेतवन विहार की खरीद, त्रायत्रिम्सा से बुद्ध का अवतरण, और जातक कहानियाँ है। अमरावती के महान स्तूप की मूर्तियाँ भी सातवाहनों से प्राप्त एक और महान कलात्मक विरासत हैं (अवारी, 2007, पृष्ठ. 47)

कुषाण कालीन वास्तुकला

कुषाण युग के दौरान भारतीय कला का विकास हुआ। जिसमें मूर्तिकला अन्य सभी कलाओं में अग्रणी थी। बुद्ध की मूर्तियां सबसे आम थीं। दो प्रमुख शैलियों ने महान उत्कृष्टता और सुंदरता की कृतियों का निर्माण किया। गांधार कला शैली प्रसिद्ध शैली है इस शैली की मूर्तियों में मुख्य रूप से बुद्ध और बोधित्सव की आकृतियाँ शामिल हैं जो भारतीय विषयों पर मजबूत ग्रीक और रोमन कलात्मक प्रभाव दिखाती हैं, गंधार कला के कुछ बेहतरीन उदाहरण हैं ब्रिटिश संग्रहालय, पेशावर संग्रहालय, बर्लिन संग्रहालय और कलकत्ता में भारत संग्रहालय में पाया जा सकता है। मथुरा की मथुरा शैली दूसरा महत्वपूर्ण शैली है। दिल्ली से 50 मील दक्षिण में, यमुना नदी पर, सांस्कृतिक गतिविधियों का एक बड़ा केंद्र था। गंधार शैली के विपरीत, मथुरा की कला में अधिक प्रामाणिक रूप से भारतीय कलात्मक प्रभाव अंकित है, विभिन्न मुद्राओं और मुद्राओं में विभिन्न प्रकार की बुद्ध प्रतिमाएँ, सभी लाल धब्बेदार बलुआ पत्थर में उकेरी गई हैं, जो इस स्कूल की विशिष्ट विशेषता हैं। (अवारी, 2007, पृष्ठ. 48)।

गुप्तकालीन वास्तुकला

गुप्तों की उत्पत्ति के साथ वास्तुकला में नई ऊर्जा का संचार हुआ। गुप्तकाल में बड़े पैमाने पर मंदिरों का निर्माण हुआ। आधुनिक जबलपुर के पास तिगवा का विष्णु मंदिर जो मामूली संरचना का है। इसमें प्रारंभिक हिंदू मंदिर की सभी मुख्य विशेषताएं हैं। एक आंतरिक गर्भगृह, प्रदीक्षणपथ से घिरा हुआ है सामने की ओर स्तंभों वाला एक बाहरी सबसे ऊपर सपाट छत है पत्थर की छत प्रारंभिक गुप्त युग की है। देवगढ़ में एक शानदार दशावतार मंदिर निर्माण के साथ अपने चरम पर पहुँच गया। भूमरा का शिव मंदिर कई कारणों से उल्लेखनीय है। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण प्रयास गर्भ

-गृह के ऊपर एक उभरी हुई संरचना द्वारा मंदिर की भव्यता को बढ़ाने के लिए देखा जाता सकता है जिसमें अब तक इस्तेमाल की जाने वाली सपाट छत को हटा दिया गया है। इस प्रकार गर्भगृह का ऊपरी भाग एक पिरामिड आकार ग्रहण करता है (अवारी, 2007, पृष्ठ. 16) । लाढ़ खा मंदिर ध्यान देने योग्य है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि इसका मूल रूप से मंदिर के रूप में उपयोग नहीं किया गया था बल्कि संभवतः यह ग्राम सभा कक्ष था। इसके अलावा भीतरगाँव का लक्ष्मण मंदिर, तिगवा का विष्णु मंदिर नचना कुठार का पार्वती मंदिर आदि।

अजंता

अजंता इस काल की अनेक बौद्ध गुफाओं में से यह सबसे उत्कृष्ट है। यहां, दक्कन की जीवित चट्टान को काटकर, वाघोर नदी के मोड़ के आसपास, उनतीस मानव निर्मित गुफाएं हैं और हम ऐसी सभी गुफाओं के दो मुख्य प्रवाह देख सकते हैं; चैत्य और विहार (अवारी, 2007, पृष्ठ. 173) उत्खनन और निर्माण का कार्य 200 ईसा पूर्व के बाद 400 वर्षों के पहले चरण के दौरान हुआ था लेकिन सबसे शानदार रचनात्मक भाग पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दो दशक से भी कम समय के दूसरे चरण में पूरा किया गया था। यह बाद का चरण वाकाटक राजा हरिषेण (460-78) के शासनकाल के साथ मेल खाता था, जो अजंता के अंतिम महान संरक्षक थे। वाकाटक अधिकांशतः शाही गुप्तों के सहायक सरदार थे। (अवारी, 2007, पृष्ठ. 174) ।

भारतीय मंदिरों की महिमा

ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी विभिन्न हिस्सों में मंदिर निर्माण में उल्लेखनीय प्रगति का काल था। उड़ीसा सातवीं से तेरहवीं शताब्दी तक का है। ग्यारहवीं शताब्दी के इन मंदिरों में सबसे प्रसिद्ध लिंगराज है (अवारी, 2007, पृष्ठ. 240) । उड़ीसा के मंदिरों में परशुरामेश्वर और लक्ष्मणेश्वर मंदिर, उदाहरण के लिए पुरी और बाद के काल में मुक्तेश्वर मंदिर और जगन्नाथ मंदिर, भुवनेश्वर में राजा रानी मंदिर और कोणार्क में सूर्य मंदिर बड़े पैमाने पर गढ़ा गया है इसके अतिरिक्त राजा रानी मंदिर, परशुराम वेश्वर मंदिर, वैताल मंदिर और योगिनी मंदिर हैं (माथुर, 2006, पृष्ठ. 68) । खंडरिया महादेव बीस मंदिरों में से सबसे बड़ा है। सबसे उत्कृष्ट राजस्थानी उदाहरण माउंट आबू पर दिलवाड़ा जैन मंदिर हैं। विशेष रूप से ग्यारहवीं शताब्दी में एक धनी जैन व्यापारी, विमला शाह द्वारा निर्मित है। मुख्य हॉल में अपने अड़तालीस स्तंभों और ग्यारह छल्लों के एक समृद्ध नक्काशीदार गुंबद के साथ, विमलवसाही जैन धार्मिक परोपकार का एक उल्लेखनीय प्रदर्शन है (अवारी, 2007, पृष्ठ. 246) । बुंदेलखंड के चंदेल 10 वीं 11वीं शताब्दी के दौरान महान निर्माता के रूप में

जाने जाते थे। उन्होंने ही खजुराहो में मंदिर बनवाया था जो अपनी सुंदर आकृतियों और कामुक मूर्तियों के लिए प्रसिद्ध है। इन 22 मंदिरों को दुनिया के महानतम कलात्मक आश्चर्यों में से एक माना जाता है। (माथुर, 2006, पृष्ठ. 58) । गुजरात स्थल पर सोलंकी मंदिर का सबसे अच्छा जीवित उदाहरण मोढेरा का सूर्य मंदिर है (अवारी, 2007, पृष्ठ. 246) ।

दक्षिण की वास्तुकला

भारत के महान मंदिरों को सामान्यतः वास्तुकला के तीन स्तरों में वर्गीकृत किया गया है; उत्तरी, दक्कनी और दक्षिण। इन सभी में विमान, गर्भगृह, शिखर और मंडप जैसी सामान्य विशेषताएं हैं। लेकिन कुछ प्रमुख अंतर हैं। उत्तरी शैली के मंदिर की मीनारें घुमावदार हुई हैं, जबकि दक्षिणी शैली के मंदिर पिरामिडनुमा हैं। दक्कनी मीनारें पिरामिडनुमा होते हुए भी उत्तरी शैली की तुलना में नीची हैं। दक्कनी शैलियाँ बादामी के प्रारंभिक चालुक्यों के साथ शुरू हुईं और बाद के चालुक्यों और होयसलों के तहत विकसित हुईं (अवारी, 2007, पृष्ठ. 196) । चालुक्यों ने एहोल में कई पत्थर निर्मित मंदिरों का निर्माण किया। जिनमें अधिकतर हिंदू हैं लेकिन कुछ जैन भी हैं। एहोल मंदिरों का शहर था जिसमें लगभग सत्तर इमारतें थीं। मंदिरों की छत सपाट या थोड़ी ढलान वाली थी और उनके ऊपर छोटे शिखर थे। ऐहोल में लाढ़ खान और दुर्गा मंदिर चालुक्य वास्तुकला का सबसे अच्छा नमूना हैं चालुक्य (माथुर, 2006, पृष्ठ. 69) । चालुक्यों ने 6 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बादामी में चट्टानों को काटकर बनाए गए चार स्तंभयुक्त हॉल भी बनवाए। जिनमें से एक ब्राह्मणवादी और एक जैन है (माथुर, 2006, पृष्ठ. 70) ।

होयसल राजा द्वारा निर्मित मंदिरों की वास्तुकला की विशिष्ट शैली है। होयसल काल के मंदिर बेलूर में देखे जा सकते हैं। कर्नाटक में हेलेबिड और श्रृंगेरी में चन्नाकेस में एक मंदिर है, जिसका निर्माण होयसल राजा विष्णुवर्धन ने 1117 में करवाया था। यह बेलूर के सभी मंदिरों में सबसे प्रसिद्ध है। हेलेबिद तारे जैसे दिखने वाले होयसल मंदिरों के लिए प्रसिद्ध है (माथुर, 2006, पृष्ठ.79) । कांचीपुरम और मामल्लपुरम पल्लव संस्कृति के केंद्र में थे (अवारी, 2007, पृष्ठ. 196) । शहर में निर्मित पल्लवों के महान स्वतंत्र मंदिरों में से, सबसे सुंदर कैलाशनाथ मंदिर हैं प्रसिद्ध वैकुंठ पेरुमल मंदिर संस्कृति और वास्तुकला में पल्लव योगदान के और भी प्रमाण हैं। (अवारी, 2007, पृष्ठ. 197) । द्रविड़ शैली में मंदिरों के शुरुआती उदाहरण पल्लव काल के हैं। पल्लवों की मंदिर वास्तुकला को दो समूहों में विभाजित किया गया है। रॉक-कट संरचनात्मक, पल्लव वास्तुकला की सबसे बड़ी उपलब्धियाँ महाबलीपुरम में चट्टानों को काटकर बनाए

गए मंदिर हैं। पाँच रथों का निर्माण सबसे पहले नरसिम्हवर्मन ने किया था और इनका नाम द्रविड़ अर्जुन, भीम, धर्मराज और सहदेव के नाम पर रखा गया है (माथुर, 2006, पृष्ठ. 73) । चोल कला पल्लव काल की निरंतरता है। चोलों ने कई सैकड़ों मंदिरों का निर्माण किया था। त्रिचिनोपोली जिले के श्रीनिवासनलूर में कोरंगानाथ का मंदिर परांतक के शासनकाल के दौरान बनाया गया था। यह चोल वास्तुकला के शुरुआती उदाहरणों में से एक है। मंदिरों में एक मंडप होता है जिसके साथ एक संलग्न विमान होता है। शिखर की ऊंचाई 50 फीट है चोल वास्तुकला ने तंजावुर में अपनी चरम सीमा हासिल की। तंजावुर में बृहदेश्वर मंदिर **(चित्र संख्या 1)** का निर्माण लगभग 1000 ई. में हुआ था। इसे "तमिल वास्तुकला का सबसे सुंदर नमूना" के रूप में वर्णित किया गया है। मंदिर की 55 मीटर लंबी मुख्य संरचना में 58 मीटर लंबा पिरामिडनुमा शिखर है। (माथुर, 2006, पृष्ठ. 75) ।

(चित्र संख्या 1): बृहदेश्वर मंदिर

Source -Archaeological Survey of India Government of India,
https://asi.nic.in/chola-temple-brhadisvara-photo-gallery/

तंजावुर में मंदिर एक विशाल दीवार वाले घेरे के केंद्र में सरेखित हैं। 11वीं-13वीं शताब्दी के बीच दक्षिणी भारत के चिदम्बरम, श्रीरंगम, गंगईकोड़-चोलपुरम, द्वारसमुद्रम और त्रिभुवनम स्मारकों की विशेषता वाले वास्तुकला का स्पष्ट उदाहरण देते हैं। भगवान शिव को समर्पित तंजौर का ब्रहदेश्वर मंदिर, जिसे बड़े मंदिर भी कहा जाता है। चोल काल की वास्तुकला से संबंधित है (माथुर, 2006, पृष्ठ. 76)। तमिलनाडु के चिदम्बरम में नटराज मंदिर भी चोल काल की

वास्तुकला का हिस्सा है। यह प्राचीन मंदिर अद्वितीय है क्योंकि यह पूरी तरह से भरतनाट्यम की कला को समर्पित है (माथुर, 2006, पृष्ठ. 77) ।

निष्कर्ष

भारतीय शैली की वास्तुकला अद्भुत, आश्चर्यजनक, विविध और विशाल है। भारतीय वास्तु की विशेषता यहाँ की दीवारों के उत्कृष्ट और प्रचुर अलंकरण में है। भित्तिचित्रों और मूर्तियों की योजना, जिसमें अलंकरण के अतिरिक्त अपने विषय के गंभीर भाव भी व्यक्त होते हैं, दो-तीन हजार वर्ष ई. पू. विकसित सिंधु घाटी सभ्यता की खोज से एक आश्चर्यजनक तथ्य प्रकाश में आया है हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाइयों से प्राप्त अवशेष तत्कालीन भौतिक समृद्धि के सूचक हैं। मौर्यकाल में राज्य का आश्रय पाकर तोरणों, स्तम्भ, चैत्यों, बिहार स्तूपों और गुफा मंदिरों में वास्तुकला का चरम विकास हुआ। गुप्तकाल में मंदिरवास्तु के स्वरूप में स्थिरता आई। ७ वीं शती के अंत में शिखर महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग समझा जाने लगा। मंदिरवास्तु में उत्तर की ओर आर्य शैली और दक्षिण की ओर द्रविड़ शैली स्पष्ट दीखती है। चोलों ने द्रविड़ शैली को विकसित किया और उसको चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। राजाराज प्रथम द्वारा बनाया गया तंजौर का शिव मंदिर, जिसे राजराजेश्वर मंदिर भी कहा जाता है, द्रविड़ शैली का उत्कृष्ट नमूना है। इस काल के दौरान मंदिर के अहाते में गोपुरम नामक विशाल प्रवेश द्वार का निर्माण होने लगा।

सन्दर्भ

अवारी, बुरिजोर, (2007), 7000 ईसा पूर्व से 1200 ईस्वी तक भारतीय उपमहाद्वीप का प्राचीन अतीत, प्रकाशित रूटलेज, पृ.140.

अवारी, बुर्जोर, (2007), 7000 ईसा पूर्व से 1200 ईस्वी तक भारतीय उपमहाद्वीप का प्राचीन अतीत, प्रकाशित रूटलेज, पृ.196.

अवारी.बुरिजोर.(2007),7000 ईसा पूर्व से 1200 ई. तक भारतीय उपमहाद्वीप का प्राचीन अतीत, प्रकाशित रूटलेज, पृ.38.

अवारी.बुर्जोर, (2007), 7000 ईसा पूर्व से 1200 ई. तक भारतीय उपमहाद्वीप का प्राचीन अतीत, प्रकाशित रूटलेज, पृ.246.

अवारी.बुर्जोर.(2007), 7000 ईसा पूर्व से 1200 ई. तक भारतीय उपमहाद्वीप का प्राचीन अतीत, प्रकाशित रूटलेज, पृ.246

चित्र स्रोत https://asi.nic.in/chola-temple-brhadisvara-photo-gallery/

दत्त. आर.सी., (2000), प्राचीन भारत में सभ्यता का इतिहास, कॉस्मो प्रकाशन, पृ.45.

दत्त.आर.सी.,(2000), प्राचीन भारत में सभ्यता का इतिहास। कॉस्मो प्रकाशन, पृ.46.

माथुर, रामप्रकाश, (2006), आर्किटेक्चर ऑफ इंडियन एंशिएंट टू मोर्डे, प्रकाशक, मुरारी लाल एंड संस, पृ.68.

माथुर, रामप्रकाश, (2006), भारत की वास्तुकला प्राचीन से आधुनिक, प्रकाशक, मुरारी लाल एंड संस, पृ.69.

माथुर, रामप्रकाश.(2006), आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया एंशिएंट टू मॉडर्न, प्रकाशक, मुरारी लाल एंड संस, पृ.73

माथुर, रामप्रकाश। (2006)। भारत की वास्तुकला प्राचीन से आधुनिक, प्रकाशक, मुरारी लाल एंड संस, पृ.58.

माथुर.रामप्रकाश, (2006),आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया एंशिएंट टू मॉडर्न प्रकाशक, मुरारी लाल एंड संस, पृ.8